भूवैज्ञानिक समय तालिका और काल निर्धारण प्रतिविधियां

(Geological Time Scale and Dating Method)

DR. VIBHA AGNIHOTRI
Associate Professor
Department of Anthropology
Nari Shiksha Niketan PG College
Chakbast Road, Kaiserbagh, Lucknow.

Disclaimer

The e-content is exclusively meant for academic purposes and for enhancing teaching and learning. Any other use for economic/commercial purpose is strictly prohibited. The users of the content shall not distribute, disseminate or share it with anyone else and its use is restricted to advancement of individual knowledge. The information provided in this e-content is developed from authentic references, to the best of my knowledge.

भूगर्भीय समय तालिका एवं काल निर्धारण प्रविधियां

(Geological time scale and Dating Method)

भूतकाल की घटनाओं एवं उद्‌विकास की दिशा को समझने के लिये जीवाश्म अभिलेखों का (Calibration) करना नितान्त आवश्यक है। जीवाश्मिक मानवविज्ञान (Palaeo-anthropology) में काल निर्धारण के लिये दो मुख्य प्रविधियां सुनिश्चित काल निर्धारण (Absolute dating) एवं आपेक्षिक या काल मापी पद्धति (Relative or Chronometric dating) अपनायी जाती है।

भूगर्भीय समय तालिका प्रारम्भ से ही पृथ्वी के सम्पूर्ण इतिहास को सम्बन्धित करती है। पृथ्वी का प्रारम्भ 4.6 अरब वर्षों पहले का माना जाता है। भूगर्भीय समय को विभिन्न कालों के युगों (epochs), कालो (Periods) एवं कल्पो (eras) में विभाजित किया जाता है। सन् 1799 में विलियम स्मिथ नामक एक अंग्रेज सर्वेक्षक ने बताया कि भूगर्भ में विशिष्ट प्रकार के जीवाश्म पाये जाते हैं और प्रत्येक पर्त में पाये जाने वाले जीवाश्म सदैव एक दूसरे के अनुवर्ती होते हैं और उनका क्रम वही रहता है।

भूगर्भ वैज्ञानिक पृथ्वी की चट्‌टानी पर्तों को छः मुख्य कल्पों में वर्गीकृत करते हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. एजोइक (Azoic)– इस कल्प में जीवन का कोई साक्ष्य नहीं मिला।

2. आर्कियोजोइक (Archaeozoic)– इस कल्प में प्रारम्भिक जीवन के साक्ष्य पाय जाते हैं।

3. प्रोटीरोजोइक (Proterozoic)– इस कल्प में जीवन के प्रारम्भ होने के बाद के स्वरूप पाये जाते हैं।

4. पैलियोजोइक (Palaeozoic)— इस कल्प में जीवन के प्राचीन स्वरूप (ancient life) पाये जाते हैं।

5. मीसोजोइक (Mesozoic)— इस कल्प में मध्यकालीन जीवन के जन्तु एवं वनस्पति स्वरूप पाये जाते हैं।

6. सीनोजोइक (Cenozoic)— इस कल्प में जीवन के नये स्वरूप पाये जाते हैं जिसमें स्तनधारियों का विकास भी सम्मिलित है।

पृथ्वी की आयु निर्धारित करने के लिये करने के लिये उपलब्ध विधियों में उन विधियों को श्रेष्ठ माना गया जो रेडियोधर्मी प्रक्रियाओं पर आधारित हैं। विभिन्न काल निर्धारण प्रविधियों को मिला जुलाकर अब भूगर्भीय समय तालिका का युक्ति संगत परिशुद्ध कालानुक्रम (Chronology) उपलब्ध है, विशेषकर उस समय का जब से हम पृथ्वी पर जन्तु एवं वनस्पति जीवन की (कैम्ब्रियन काल से अब तक) खोज खबर ले सकते हैं।

कैम्ब्रियन युग सबसे प्रथम भूगर्भीय काल है जिसमें बहुतायत में जीवाश्म साक्ष्य उपलब्ध है और जिन्हें उत्तरोत्तर उद्विकासीय क्रमों में प्रस्तुत किया जा सकता है। विद्वान अमरीकी भूगर्भ रसायनज्ञ जे0एल0 कल्प (J.L. Kalp) ने तुलनात्मक भूगर्भिक समयतालिका प्रस्तुत की जिसमें 1964 में लंदन की जियोलोजिकल सोसाइटी की एक संगोष्ठी में संशोधन भी किये गये।

भूगर्भीय समय तालिका (Geological Time Scale)

भूगर्भीय समय तालिका का विकास सन् 1700 से अबतक हुआ है। यह दो सिद्धान्तों पर आधारित है।

1. इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की दो पर्तों में नीचे पायी जाने वाली पर्त पुरानी एवं ऊपर पायी जाने वाली पर्त नयी मानी जाती है।

2. पृथ्वी के वे स्तर जिसमें एक ही प्रकार के जीवाश्म पाये जाते हैं। लगभग एक ही काल का माना जाता है।

इस प्रकार जीवाश्मिकीय एवं स्तरीकरण सम्बन्धित सूचनाओं से तिथि निर्धारण के आपेक्षित अनुक्रम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सम्बन्धित

जीवाश्मों अथवा भूगर्भीय घटनाओं के आधार पर सामान्यतः विशिष्ट युगों (epochs), कालों (periods) एवं कल्पो (eras) के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ज्ञात स्तरों एवं जीवाश्मों के आधार पर नये खोजे हुये स्थलों को उनके उचित कालक्रम में रखा जा सकता है। इस प्रकार भूगर्भीय समय तालिका विशिष्ट स्तरों के लिये कालक्रमिक तिथि का निर्धारण करने में सक्षम है।

भूगर्भीय समय तालिका पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास को तिथिबद्ध करने के लिये एक व्यापक ढाँचा प्रदान करती है, जिसमें जीवाश्म अभिलेखों के रूप में जीवन के उद्विकास के बारे में जानकारी मिलती हैं। यह ज्ञात है कि एजोइक और प्रीटीरोजोइक कल्पो का विस्तार लगभग दो अरब वर्षों तक रहा है। इसके बाद पैलियोजोइक कल्प आता है जिसमें अनेक जीवाश्म प्राप्त हुये हैं। इस युग में पृष्ठवंशीय प्राणी पहले समुद्र में और बाद में भूमि पर प्रकट हुए और विस्तरित हो गये। इसके बाद मीसोजोइक कल्प आया जिसमें सरीसृपों (Reptiles) का बाहुल्य हुआ। इसके बाद सीनोजोइक कल्प या स्तनधारियों (Reptiles) का बाहुल्य हुआ। इसके बाद सीनोजोइक कल्प या स्तनधारियों का युग कहा जाता है। इस कल्प का अंतिम युग प्लाइस्टोसीन अथवा हिमयुग था, जिसमें जलवायु में बहुत उतार चढ़ाव हुये हैं, आच्छादन और जीनस होमों का उद्भव भी हुआ। जीवाश्मों की सहायता से न केवल पृथ्वी के इतिहास को समझा जा सकता है वरन् जीवाश्म वास्तव में बहुत प्राचीन प्राणी के अवशेष होते हैं जिनसे हमें जीवन इतिहास के बारे में सार्थक सूचनायें प्राप्त हो सकती हैं। जीवाश्म के रूप में जन्तु एवं वनस्पतियों दोनों के ही अवशेष मिल सकते हैं। जन्तुओं के जीवाश्म अधिकतर उनके शरीर के कड़े भागों जैसे दाँत अथवा अस्थियों के होते हैं।

प्राणी की मृत्यु के बाद उसके शरीर के कोमल भाग जैसे कि माँसपेशियां, गुर्दे, फेफड़े आदि मिट्टी में पड़े रहने के कारण बहुत ही कम समय में नष्ट हो जाते हैं परन्तु दाँत एवं कंकाल एक लम्बे समय तक नष्ट नहीं होते। यदि जीवाश्मन की उपयुक्त दशायें न हो तो यह भी नष्ट हो

जाते हैं। यदि प्राणी की अस्थियाँ अथवा कंकाल यूँ ही खुला पड़ा रहे तो गर्मी, सर्दी, धूप तथा वर्षा के कारण कुछ समय में ही नष्ट हो जाता है, परन्तु यदि यह पृथ्वी में मिट्टी के नीचे दबा रहता है और इस पर बराबर जमाव होता रहा है तो भूमि के रासायनिक पदार्थ अस्थियों के अन्दर प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण जैव पदार्थ (Organic matter) को पृथ्वी में मौजूद खनिजों द्वारा प्रतिस्थापित (Replace) कर देते हैं। इसके फलस्वरूप कालान्तर में अस्थि का आकार तो पहले जैसा ही रहता है किन्तु वह पत्थर की तरह हो जाती है और फिर नष्ट नहीं होती। ऐसे ही पथराये हुय अवशेषों को जीवाश्म कहते हैं। अधिकतर ऐसे अवशेष कंकाल के टूटे हुये भागों के ही मिलते हैं। कभी–कभी ऐसा भी हो सकता है कि जीव का सम्पूर्ण मृत शरीर साँचे के रूप में पाया जाये। उदाहरण के लिए जर्मनी की ट्रायसिक (Triassic) पर्तों से आदि पक्षी आरकेओपटेरिक्स के दो कंकाल इसी प्रकार प्राप्त हुये हैं।

जीवाश्मन तभी सम्भव होता है जब उपयुक्त जीवाश्मन दशायें संभव हो, जो निम्न है–

1. प्राणियों के शरीर के कठोर भाग ही अधिकतर जीवाश्मित होते हैं जैसे दाँत, सीप, शंख अथवा कंकाल की अस्थियाँ आदि। यदि जीवाश्मन की आदर्श दशायें संभव हो तो कभी–कभी शरीर के अपेक्षाकृत कोमल भाग भी जीवाश्म रूप में सुरक्षित रह सकते हैं।

2. प्राणी का मृत शरीर जलवायु क्रिया (Climate Action), भूगर्भीय शक्तियों एवं अन्य प्राणियों से सुरक्षित रहना चाहिए।

अधिकांश जीवाश्म अवशेष खनिजीकृत अस्थियों के रूप में ही होते हैं। यह खनिजीकरण (Mineralization) धीरे–धीरे जैव पदार्थ के खनिजों में प्रतिस्थापन द्वारा होता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में अन्य प्रकार के परिरक्षण भी सम्भव है जैसे साइबेरिया अथवा अलास्का जैसे शीत प्रधान प्रदेशों में प्राणी का सम्पूर्ण शरीर जमकर बर्फ बन जाये अथवा गर्म एवं शुष्क क्षेत्रों में जब प्राणी का शरीर शीघ्रता से निर्जलित हो कर ममी (Mummy) अथवा परिरक्षित शव के रूप मे बदल जाये। ऐसी ममी के शरीर

के कोमल भाग भी मोम में परिरक्षित हो सकते हैं।

जीवाश्मों के प्रकार (Types of Fossils)

जिन दशाओं में जीवाश्म मिलते हैं। वह उनके मूल संघटन एवं उस पदार्थ पर निर्भर करता है जिसमें कि वे अन्तः स्थापित है। जीवाश्मों के मुख्य प्रकार निम्नलिखित है–

1. सम्पूर्ण शरीर का सुरक्षित रहना–

कभी–कभी कंकाल के साथ ही शरीर के कोमल भाग भी सुरक्षित रहते हैं और परिवर्तन भी कम होता है। उदाहरण के लिये साइबेरिया की बर्फ में पाये गये मैमथ एवं ऊनदार गेंडा (Wolly Rhinoceros)। लेकिन इस प्रकार का जीवाश्मन बिरले ही होता है।

2. सम्पूर्ण कंकाल का लगभग सुरक्षित होना–

कभी–कभी पूरा कंकाल सुरक्षित रहता है और उसका केवल जैविक पदार्थ ही नष्ट होता है। कभी–कभी चूने के कार्बोनेट भी जम जाते हैं जिससे वह अधिक भारी एवं सघन हो जाते हैं। ये जीवाश्मन भी बिरले ही होता है।

3. शरीर का कार्बनीकरण (Carbonisation of body)–

कुछ जन्तु एवं वनस्पतियों जिनके शरीर का कंकाल काइटिन से बना होता है, उनके शरीर के पदार्थ का कार्बनीकरण हो जाता है। ऐसे प्राणियों में ऑक्सीजन और नाइट्रेजन क्षय हो जाता है जिसके कारण उनके शरीर में कार्बन का अनुपात अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को कार्बनीकरण कहते हैं।

4. कंकाल का ढांचे के रूप में सुरक्षित रहना–

कभी–कभी शरीर का ढाँचा ही शेष रह जाता है और कंकाल विलोपित हो जाता है। ऐसा तब होता जब कंकाल की रचना में आरगोनाइट हो और वह किसी सरंध्र (porous) स्तर में गढ़ा हो। ऐसी स्थिति में कार्बोनेट युक्त जल चट्टानों से रिस कर कंकालीय पदार्थ को बाइकार्बोनेट के रूप में बहा ले जाता है। इसके फलस्वरूप उसके बाहरी तथा भीतरी

सतह का ढाँचा ही शेष रह जाता है। इन दोनों पर्तों के बीच का स्थान रिसते हुए पानी के द्वारा आये हुये खनिजों से भर जाता है। इस प्रकार का जीवाश्मन अधिकतर मोलस्का फाइलम के प्राणियों में देखा जाता है।

5. अश्मीकरण (Petrification)

कुछ ऐसे जीवाश्म मिले हैं, जिनमें प्राणी का बाहरी आकार एवं आंतरिक संरचना दोनों ही सुरक्षित रहती है। वास्तव में इनके कंकाल का मूल पदार्थ किसी अन्य खनिज के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। इसी कारण वृक्षों के ऐसे जीवाश्म जिनमें कोशिकायें, वाहिनियां आदि सभी दिखलाई देती है उनमें वास्तव में कोशिकाओं की दीवारों का सेल्यूलोज सिलिका के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है क्योंकि इस क्रिया में एक कण दूसरे कण के द्वारा प्रतिस्थापित होता है। इस प्रकार की प्रक्रिया में निम्नलिखित खनिज प्रमुख हैं जो प्राणियों के शरीर के जैविक पदार्थ का प्रतिस्थापन करते हैं– चूने के कार्बोनेट, सिलिका, लौह पाइराइट, लोहे के ऑक्साइड मैगाकाइट आदि।

6. अंकण (Imprint)

कभी–कभी चट्टानों में प्राणियों के पैर के निशान एवं छत्रिक मछलियों (Jelly Fishes) के अंकन पाये जाते हैं। यद्यपि इनमें प्राणी के शरीर का कोई भी भाग नहीं होता फिर भी इन्हें जीवाश्म माना जाता है।

जीव वैज्ञानिक जीवाश्म विज्ञान में उद्विकास का विशेष रूप से अध्ययन करते हैं क्योंकि जीवाश्म प्रारूपों के स्तरीकृत अनुक्रमों के अध्ययन के आधार पर प्रजातीय इतिहास अथवा जन्तु एवं पशुओं का जातिवृत्त इतिहास निश्चित रूप से जाना जा सकता है।

काल निर्धारिण प्रविधियाँ (Dating Method)

कालानुक्रम (Chronology) का ज्ञान प्रागैतिहास की एक महत्वपूर्ण आधारशिला है, जिसके बिना पुरातत्वशास्त्र तथा प्रागैतिहास का ज्ञान अधूरा एवं निरर्थक है क्योंकि पुरातत्वशास्त्र के अन्तर्गत हम मानव का उद्भव एवं प्राचीन इतिहास का अध्ययन करते हैं, जिससे उसकी समय अवधि काफी लम्बी हो जाती है। प्रागैतिहासिक पुरातत्वशास्त्र निरक्षर

भूगर्भीय समय तालिक (The Geological Time Scale)

कल्प (काल) (Era)	अवधि (Period)	युग (Epoch) दशलक्ष	प्रारम्भिक तिथि	विशिष्ट लक्षण (Distinctive Features)
सीनोजोइक (Cenozoic)	क्वाटरनरी	अभिनव (नूतन)	0.01	जन्तु एवं वनस्पतियों का प्रथम पालतू होना, पहली बार वनस्पति एवं जन्तुओं का पालन
		प्लेस्टोसीन	2	होमो का प्रथम अवतरण, महाद्वीपीय बर्फ पट्टियाँ, जीनस होमो का उद्भव एवं महाद्वीपों की बर्फ
	तृतीयक / टर्शरी	प्लायोसीन	7	विशाल मांसाहारी (Carnivores), बड़े सर्वभक्षी जन्तु (Carnivores) पट्टियाँ
		मायोसीन	26	प्रथम होमोनिड्स, चरने वाले स्तनधारियों की प्रथम बाहुल्यता पहले होमिनिड एवं शाकाहारी स्तनधारियों का बाहुल्य
		आलिगोसीन	38	दौड़ने वाले विशाल स्तनधारी
		इओसीन	54	स्तनधारी, पक्षी एवं कीटों का पृथ्वी पर बाहुल्य
		पैलियोसीन	65	अनेक प्रकार के खुर वाले स्तनी जीव

कल्प (काल) (Era)	अवधि (Period)	युग (Epoch) दशलक्ष	प्रारम्भिक तिथि	विशिष्ट लक्षण (Distinctive Features)
	क्रिटेशियस		135	डायनासोर का विलुप्त होना, प्रथम प्राइमेट अपरावाले (Placental) प्रथम स्तनी जीव
मीसोजोइक (Mesozoic)	जुरैसिक		180	प्रथम स्तनधारी एवं पक्षी, डायनासोर का बाहुल्य
	ट्रायसिक		230	प्रथम डायनासोर, कोन वाले वृक्षों की बहुलता
	पर्मियन		280	सरीसृपों का अनुकूलनीय विकिरण (adaptive radiation) अनेक समुद्री जीवों का विलोपन, दक्षिणी ध्रुव
	कार्बोनीफेरस		345	प्रथम सरीसृपों, शार्क एवं एम्फीबियनों की बाहुल्यता, कीटों का अनुकूलनीय विकिरण
पैलियोजोइक (Palaeozoic)	डिवोनियन		400	कोयले के विशाल जंगल, कोनीफर्स बड़े एवं पुराने वृक्ष एवं बीज वाले फर्न, प्रथम एम्फीबियन एवं कीट
	सिल्यूरियन		450	प्रारम्भिक मछलियाँ, प्रथम स्थलीय जन्तु एवं वनस्पतियां
	आर्डोवीसियन		500	प्रथम मछलियाँ, प्रथम कशेरूकी जन्तु, अकशेरूकीय (Invertebrates) की बहुलता
	कैम्ब्रियन		600	तिथियाँ अनुमानित हैं और मापदंडों के आधार पर इनकी विविधता हो सकती है। यह अनुमान किया जाता है कि प्रारम्भिक जीवित प्राणियों की उत्पत्ति लगभग 3.5 अरब वर्षों पूर्व हुई होगी।

समाजों का अध्ययन है, जिसके द्वारा प्रागैतिहासिक मानव का विकास कार्य व विस्तार की विभिन्न स्थितियों एवं तिथियों का बोध उनके पुरावशेषों के विश्लेषण से एवम् जिस स्तर से वे पाये गये हैं, उसकी स्थिति से किया जा सकता है, क्योंकि ये समयकाल बहुत अधिक विस्तृत होता है तथा सभी घटनाओं को वर्षों, महीनों एवं घंटों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में बहुत सी घटनाओं को केवल सापेक्ष तिथि ही की जा सकती है। यद्यपि सापेक्ष तिथि निर्धारण निरपेक्ष तिथि निर्धारण के समान ही महत्वपूर्ण नहीं हो सकती फिर भी ये तिथि निर्धारण का एक साधन है।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अनेक विद्वानों ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया लेकिन अभी तक कोई भी ऐसी विधि की खोज नहीं हो पायी है, जिसके आधार पर प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को बिल्कुल सही तिथि प्रदान की जा सके। किसी भी प्रागैतिहासिक संस्कृति की तिथि निर्धारण दो प्रकार से की जा सकती है—

1. प्रागैतिहासिक वस्तुओं के आन्तरिक तत्वों के विश्लेषण से।
2. जिन स्तरों से जिस सन्दर्भ में सामग्री प्राप्त हुई है, उनके अध्ययन से।

इस प्रकार मुख्य रूप से सभी तिथि निर्धारण की दो प्रमुख विधियाँ होती हैं:—

1. सापेक्ष तिथि निर्धारण (Method of Relative dating or Long Range dating)
2. निरपेक्ष तिथि निर्धारण (Method of Absolute dating or Method of Short Range dating)

1. सापेक्ष तिथि निर्धारण (Method of Relative dating or Long Range dating)

इसके अन्तर्गत पाँच प्रमुख विधियाँ आती हैं—

1. स्तरीकरण विधि (Stratigraphical Method)
2. पदार्थ—क्रम विधि (Typology and Technology)
3. जीवाश्म प्रमाण (Fossil Evidence)

4. पराग–परीक्षण विधि (Pollen Analysis)

5. भाल्य विधि (Varve Counting)

6. वृक्ष–वृत्त विधि (Dendrochronology)

1. स्तरीकरण विधि (Stratigraphy)

भूगर्भशास्त्र एवं पुरातत्वशास्त्र में स्तरीकरण का अपना एक विशिष्ट स्थान है। पृथ्वी के निश्चित अनुक्रम को स्तरीकरण की संज्ञा दी जाती है। जल एवं वायु के माध्यम से मिट्टी, बालू एवं कंकड़ आदि का जमाव पृथ्वी के स्तरों के निर्माण में सहायक होता है। अतः स्तर विन्यास एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जो कि पृथ्वी पर निरंतर सक्रिय रहती है। स्तरीकरण के सिद्धान्त के अनुसार भूभाग में सबसे नीचे की सतह प्राचीन एवं सबसे ऊपर मिट्टी की सतह नवीन होती है, लेकिन व्यवहार में कभी–कभी इससे भिन्न स्थिति भी पायी जाती है। भूतल में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों में ये स्तर अव्यवस्थित हो जाता है। इसलिये इन बातों को ध्यान में रखते हुये तिथि निर्धारण करना चाहिए। यह विधि उन भौगोलिक क्षेत्रों हेतु उपयोगी नहीं है जहां भूस्खलन, भूचाल जैसी घटनायें घटित हुई हों।

2. पदार्थ–क्रम विधि (Typology and Technology)

इस विधि में किसी वस्तु के स्वरूप तथा उसके निर्माण में प्रयुक्त शैली का अध्ययन किया जाता है। खुदाई में जो वस्तुयें मिलती हैं उनकी आकार–प्रकार के आधार पर तुलना करके उनकी समानता और असमानता को देखा जाता है और अन्य प्राप्त सामग्रियों में से यदि किसी की तिथि ज्ञात हो तो इन वस्तुओं की तिथि भी उसी ज्ञात तिथि के अनुसार निर्धारित कर दी जाती है। सन् 1901 में Pateri ने एक शव स्थल के काल निर्धारण के लिये इस विधि का प्रयोग किया।

3. जीवाश्म प्रमाण (Fossil Evidence)

तिथि निर्धारण की विधियों में ये बहुत महत्वपूर्ण विधि है। प्रागैतिहासिक (Prehistoric) काल में मानव का जीवन प्रागैतिहासिक जीव जन्तुओं पर ही आधारित होता था, वे ही उनकी जीविका का मुख्य साधन

थे। इसके अतिरिक्त प्रायः भूगर्भीय पर्तों में प्रागैतिहासिक उपकरणों के साथ पशुओं के अवशेष भी प्राप्त होते हैं।, जिन्हें जन्तु (Fauna) कहा जा सकता है। इन्हीं के आधार पर स्तरण तथा जमाव की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। जीवाश्मिक प्रमाणों का महत्व उस समय और भी बढ़ जाता है जब ऐसे जीवाश्म प्राप्त होते हैं जिनका क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से ज्ञात हो। ऐसे जीवाश्म समय सारणी (Time Scale) का कार्य करते हैं। ये विधि उस समय उपयोगी नहीं होती जब जीवों के क्रमिक विकास का क्रमिक इतिहास ज्ञात नहीं होता।

4. पराग–परीक्षण विधि (Pollen Analysis)

यह विधि स्वीडन के वनस्पतिशास्त्री डॉ0 लेनर वॉन पोस्ट ने विकसित की। इनके अतिरिक्त मॉरटिन एवं डिम्नले ने भी क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इन विद्वानों के अनुसार पौधों के पुष्पों से परागकण निरंतर हवा अथवा अन्य माध्यम से प्रसारित होते रहते हैं। इन परागकणों का वजन तथा आकार बहुत ही छोटा होता है। ये परागकण जब जीवाश्म बनते हैं तो ये हजारों वर्षों तक सुरक्षित रहते हैं। जब ये परागकण किसी अन्य वस्तु के साथ मिलते हैं तो उस वस्तु का तिथि निर्धारण भी परागकणों की तिथि के अनुसार कर दिया जाता है।

इस विधि द्वारा आदिकालीन जलवायु एवं वनस्पति के बारे में भी पता चलता है कि वर्तमान काल की वनस्पति और आदिकालीन वनस्पति में क्या अन्तर है।

5. भाल्य विधि (Varve Counting)

यह विधि पृथ्वी के उन भागों में विविध के लिये उपयोगी है जहाँ केवल दो प्रकार के मौसम पाये जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में प्रत्येक वर्षा या गर्मी के मौसम में बर्फ पिघलकर सर्द मौसम का मलवा, धूलकण एवं अन्य तत्व वर्षा में बहकर एक स्तर बना लेते हैं। यह क्रम प्रत्येक वर्ष चलता रहता है और मिट्टी की सतहें बनती चली जाती है। खुदाई के क्रम में कोई जीवाश्मिक सामग्री जिस स्तर पर मिलती है तो उस परत का काल निर्णय करके उस सामग्री का का निर्धारण उसी के अनुसार किया जाता है।

6. वृक्ष–वृत्त विधि (Dendro Chronology)

इस विधि का प्रयोग ए.ई. डगलस ने सन् 1901–1913 के बीच किया। समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों के कुछ वृक्षों में प्रत्येक वर्ष एक वलय (Annual ring) का निर्माण होता है। अधिक वर्षा होने पर दो वलयों के बीच अन्तर बढ़ जाता है। वर्षा कम होने पर दो वलयों के बीच अन्तर कम होता है। वृक्षों के इन वलयों की गिनती से वैज्ञानिकों के पिछले दो हजार वर्षों तक की वर्षा का पता लगा लिया है। कटे हुये वृक्ष की सबसे बाहर के वलय से पता चल जाता है कि वह कब काटा गया या कब सूखा।

इसी प्रकार कोई जीवाश्मिक सामग्री जो इन वृक्षों के साथ मिलती है तो उसका काल निर्धारण उन वलयों को गिनकर किया जा सकता है।

निरपेक्ष काल निर्धारण विधियाँ (Short Range Dating)

जब तिथि निर्धारण वर्षों महीनों एवं दिनों में की जाती है तो इस प्रकार की गणना को निरपेक्ष काल निर्धारण या (Short Range dating or Absolute Dating) कहते हैं। प्रागैतिहासिक मानवशास्त्र में किसी भी घटना की एकदम निश्चित तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। इसमें 100 से 200 वर्षों को कोई भी महत्व नहीं होता, ये तो केवल कुछ पलों के ही समान होते हैं, लेकिन फिर भी यह सापेक्ष तिथि निर्धारण की विधियों से अच्छी मानी जाती है और तिथि निर्धारण की सबसे महत्वपूर्ण विधियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार निरपेक्ष काल के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियाँ आती हैं–

1. सौर विकिरण (Solar Radiation)
2. पुराचुम्बकत्वविधि (Palaeomagnetic method)
3. रेडियोकार्बन विधि (Radio-Carbon (C^{14}) Dating Method)
4. फ्लोरीन विधि (Flourine Method)
5. नाइट्रोजन विधि (Nitrogen Method)
6. पोटैशियम आर्गन विधि (Potassium Argon Method or K^{40})

7. ऑब्सीडियन या फिजन ट्रैक विधि (Obsidian or Fission Track Mehod)
8. ताप संदीप्त विधि (Thermoluminiscence Method)

1. सौर विकिरण (Solar Radiation)

इस विधि की खोज बलेन चार्ड ने सन् 1942 में की थी। यह विधि हिमयुग (Ice Age) के अवशेषों के काल–मापन के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। उन्होंने सौर विकिरण से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुये बताया कि प्लेस्टोसीन काल (Pleistocene) में ध्रुवों के अपने–अपने स्थान से हट जाने के कारण हिमयुग (Glaciation) तथा अन्तर हिमयुग (Interglaciation) हुये हैं।

सौर विकिरण के बारे में मिलैन्कोविच का कहना है कि ब्रह्मण्ड में पृथ्वी की परिक्रमा की कक्षा तथा धुरी में परिवर्तन होने के कारण पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की उष्णता तथा गति में परिवर्तन आ जाता है और ध्रुवों के स्थान परिवर्तन की तिथि ज्ञात करके हिमयुग तथा अन्तरहिमयुग की तिथि भी आंकी जा सकती है।

2. पुराचुम्बकत्वविधि (Palaeomagnetic method)

ये विधि प्रो0 थेलियर (1950) द्वारा दी गयी। सिद्धान्ततः मिट्टी में लौहिक नमक के अशुद्ध तत्व मौजूद रहते हैं जिनकी प्रकृति चुम्बकीय होती है। जब एक प्रागैतिहासिक चूल्हा या मिट्टी गर्म की जाती है तो चुम्बकीय अशुद्ध पदार्थों के कारण उस स्थान की मिट्टी के तात्कालिक चुम्बकीय क्षेत्र भी विकसित होते हैं। उस क्षेत्र के इन दोनों चुम्बकीय आंकड़ों की तुलना करके यह जाना जा सकता है कि वह चूल्हा या भट्ठी कितने वर्ष पहले जलाई गई थी। इस विधि से केवल कुछ वस्तुओं की ही तिथि निर्धारित की जा सकती है।

3. रेडियोकार्बन विधि (Radio-Carbon (C^{14}) Dating Method)

अब तक ज्ञात की गयी सभी विधियों में सर्वाधिक उपयोग एवं विश्वसनीय विधि रेडियोकार्बन विधि है। इसका अविष्कार सन् 1943 में विलियर्ड एफ. लिवी ने किया था। आधुनिक युग में अनेक विद्वानों ने इसे

परिष्कृत किया। क्वाटरनरी जमावों की तिथि मालूम करने के लिये कार्बन–14 जो कि एक जैविक पदार्थ होता है, का प्रयोग करते हैं। पुराविद मीजोलिथिक, नियोलिथिक एवं ताम्रयुग की वस्तुओं की आयु ज्ञात करने के लिये भी इसका प्रयोग करते हैं। यह विधि इस तथ्य पर आधारित है कि पृथ्वी के सभी जीवित प्राणी अपने शरीर में C^{14} तथा C^{12} का एक निश्चित अनुपात बनाये रखते हैं। C^{12} अविघटनशील कार्बन का स्वरूप है। C^{14} विघटनशील है जो कि C^{12} का रेडियोएक्टिव आइसोटोप होता है। बाहरी वातावरण में सूर्य की किरणों के न्यूट्रांस के कण उपस्थित होते हैं। ये कण नाइट्रोजन के परमाणुओं से टकराते हैं और नाइट्रोजन का न्यूक्लियस एक प्रोटॉन को बाहर निकाल देता है, जिससे नाइट्रोजन C^{14} में बदल जाती है। ये C^{14} रेडियोएक्टिव होती है और एक इलेक्ट्रॉन को देने के बाद पुनः नाइट्रोजन में बदल सकती है।

वायुमंडल में कार्बन–14 कॉस्मिक किरणों की वजह से कार्बन–14 अधिक मात्रा में बनने लगता है। अधिक ऊर्जा वाली कॉस्मिक किरणें प्रत्येक बार नाइट्रोजन–14 से टकराकर एवं प्रोटॉन और कार्बन–14 के अणु का निर्माण करती है। इस प्रकार निर्मित कार्बन–14 परमाणु वायुमंडल में उपस्थित ऑक्सीजन से मिलकर विघटनशील कार्बन द्विऔषधि $C^{14}O_2$ का समान अनुपात होता है, जिसे पेड़ पौधे अवशोषण द्वारा ग्रहण करते हैं। प्राणियों का भोजन पेड़–पौधे हैं। इसलिये प्राणियों के शरीर में इनके द्वारा कार्बन (C^{14}) पहुंच जाता है। इस प्रकार सभी प्राणियों के शरीर में C^{12} तथा C^{14} एक निश्चित अनुपात में उपस्थित रहता है। जब किसी प्राणी या पेड़–पौधे की मृत्यु हो जाती है तो वह वातावरण से कार्बन ग्रहण करना बन्द कर देता है, जिससे कार्बन की मात्रा एक निश्चित क्रम में धीरे–धीरे घटने लगती है, क्योंकि कार्बन–14 विघटनशील है, जबकि कार्बन–12 विघटनशील होने के कारण उसी मात्रा में बनी रहती है जिस मात्रा में वह मृत्यु के समय थी। प्रयोगशाला में उस मृत पदार्थ में उपस्थित (C^{14}) तथा (C^{12}) से अनुपात निश्चित करके किसी भी पदार्थ की मृत्यु से लेकर वर्तमान समय तक की गणना की जा सकती है।

इस विधि द्वारा लकड़ी, कोयला, छालपत्ती, जली हुई हड्डी, दाँत, बाल, सीप, चमड़े, जले हुए अन्न के दानें, कपड़ा, दलदली मिट्टी आदि वस्तुओं का असफलतापूर्वक तिथि निर्धारण किया जा सकता है। इस विधि के पचास हजार वर्ष से अधिक पुरानी वस्तुओं की काल गणना नहीं की जा सकती है क्योंकि 50,000 से 70,000 वर्ष के बीच कार्बन–14 के ह्रास होने की गति काफी धीमी होती है।

4. फ्लोरीन विधि (Flourine Method)

इस विधि को कारनोट ने सन् 1819 में विकसित किया, बाद में के0पी0 ओकले ने भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह विधि ये बताती है कि एक ही स्थान से प्राप्त सबसे प्राचीन वस्तुओं में फ्लोरीन बहुत अधिक मात्रा में पायी जाती है क्योंकि मिट्टी में नमी होती है। अतः फ्लोरीन के कण पाये जाते हैं, क्योंकि फ्लोरीन के कण पानी में पाये जाते हैं।

इस प्रकार ये फ्लोरीन कण जीवाश्म सामग्री में प्रवेश कर जाते हैं और एक ही स्थान में पाये जाने वाली सभी जीवाश्मिक सामग्रियों में फ्लोरीन समान मात्रा में पायी जाती है। अस्थियों में एक बार फ्लोरीन प्रवेश करने के बाद वे शीघ्र नष्ट नहीं होती। इस प्रकार एक ही स्थान से प्राप्त बहुत सी अस्थियों का क्रम निर्धारित करने में यह विधि अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि एक ही स्थान से प्राप्त जीवाश्मों में फ्लोरीन की मात्रा बराबर होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो ये अनुमान किया जा सकता है कि सभी जीवाश्म एक समय के नहीं है और उनमें क्लोरीन की मात्रा को मापकर उनके बीच अन्तर पता किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सर्वप्रथम पिल्टडाउनमैन की जालसाजी को सिद्ध किया गया था।

5. नाइट्रोजन विधि (Nitrogen Method)

इस विधि द्वारा मिट्टी में दबी अस्थियों की तिथि निर्धारित की जा सकती है कि अस्थि कितनी पुरानी है, क्योंकि मिट्टी में दबी अस्थियों में नाइट्रोजन की मात्रा निरंतर कम होती जाती है। इस प्रकार अस्थि जितनी पुरानी होगी उसमें नाइट्रोजन की मात्रा उतनी ही कम होगी जबकि

फ्लोरीन की मात्रा बढ़ती जायेगी क्योंकि अस्थि मिट्टी में दबी है। वैज्ञानिक विधि से जीवाश्मों में नाइट्रोजन की मात्रा पता करके जीवाश्म की आयु बताई जा सकती है।

6. पोटैशियम आर्गन विधि (Potassium Argon Method or K^{40})

पोटैशियम आर्गन विधि का प्रयोग सर्वप्रथम डब्लू0एच0 पिन्सन (W.H. Pinson) ने 1937 में किया था। इस विधि का उपयोग चट्टानों और ज्वालामुखी की राख की तिथि निर्धारण करने में प्रयोग किया जाता है। सिद्धान्ततः प्रत्येक पदार्थ मं पोटैशियम की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य पायी जाती है तथा पोटैशियम के तीनों समस्थानिक K^{39}), (K^{40}), (K^{41}) एक निश्चित अनुपात में पाये जाते हैं। इनमें से K^{40} रेडियोएक्टिव होता है और वह धीरे–धीरे विघटित होता रहता है। उदाहरण के लिये यदि पोटैशियम (K^{44}) की मात्रा 100 है तो वह 89 भाग कैल्शियम (Ca^{40}) तथा 11 भाग आर्गन (A^{40}) नामक गैस में बदल जाता है।

पोटैशियम (K^{40}) का अर्द्धआयु काल 13 लाख वर्ष होता है। इस प्रकार इस विधि से पोटैशियम में हुई कमी का अन्तर पोटैशियम के अन्य समस्थानिक (K^{39} तथा K^{41}) के अनुपात की तुलना करके काल निर्धारण किया जा सकता है। इसके लिये फ्लेमफोटोमीटर, न्यूट्रॉन एक्टिविटर और मॉसएक्टिविटर यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

7. ऑब्सीडियन या फिजनट्रैक विधि (Obsidian or Fission Track Method)

कैलिफोर्निया के शवागारों के काल निर्धारिण के लिय इस विधि का प्रयोग डी0 क्लार्क ने किया। ऑब्सीडियन एक विशेष प्रकार का पदार्थ या Volcanic glass है। जैसे जी ऑब्सीडियन पत्थर की सतह से कोई टुकड़ा काटा जाता है, वैसे ही वह सतह वातावरण में व्याप्त नमी से जल ग्रहण करना शुरू कर देता है, जिससे उसके ऊपरी भाग में एक सतह बन जाती है जो कि हाइड्रेशन होती है और ये सतह फ्लेक्स निकालने के समय से लेकर वर्तमान समय तक एक निश्चित गति से बढ़ती जाती है। अतः वायुमंडल में व्याप्त नमी को ध्यान में रखकर ऑब्सीडियन में की गयी

कॉट–छाँट की तिथि आंकी जा सकती है। इस प्रकार ऑब्सीडियन के बने उपकरणों तथा अन्य अवशेषों की तिथि आंकी जा सकती है। हाइड्रोजन की क्रिया केवल ऑब्सीडियन पत्थर पर ही होती है। इसलिये परीक्षण करने के लिये धातु की आरी से एक टुकड़ा अलग कर लिया जाता है फिर उसे हाथों से घिसकर बहुत पतला कर लिया जाता है, फिर इस सेक्शन को माइक्रोस्कोप से देखते हैं जिसमें हाइड्रेशन की एक पतली चमकदार रेखा दिखायी देती है, जिसकी मोटाई पता करके वस्तु की आयु बतायी जा सकती है।

8. ताप संदीप्त विधि (Thermoluminiscence Method)

इस विधि की खोज जी0सी0 कैनेडी एवं एफ नॉफ ने 1600 में की। इस विधि से मिट्टी के बर्तन (मृदभाण्ड), ईंट एवं काँच के बर्तनों का कालमापन किया जा सकता है। इसके लिए 400°C से 1200°C के तापमान में पकाये गये बर्तनों की ताप संदीप्ति की मात्रा को मापा जाता है। प्राप्त मिट्टी की सामग्री अन्य पदार्थों से इलेक्ट्रॉन लेकर अपने ऊर्जा के रूप में संग्रह कर लेती है और गर्म करने पर प्रकाश के रूप में यह ऊर्जा निकलती है, जिसे ही ताप संदीप्त Thermoluminiscence (T.L.G.10) कहा जाता है। ठण्डी होने पर अल्फा कण को वह वस्तु अवशेषित कर लेती है। इस प्रकार दोनों बार ग्रहण की गयी ऊर्जा की दर को प्रयोगशाला में ज्ञात करके उस वस्तु की तिथि बतायी जा सकती है।